धर्मस्थल

प्रियंवद

धर्मस्थल में कथानक है विजन, जो इंजीनियर होकर विदेश में जा बसा है। कथानायक कामिल का बालसखा। कामिल की पत्नी न बन सकी प्रेयसी-सी है दाक्षायणी; जो बेहद महत्वाकांक्षिणी है; ओर जिसकी मुखमुद्रा, मुद्राओं (धन) के दर्शन से ही, लगता है, खिलती-खुलती है। यूँ उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण पात्र है आकर्षक व्यक्तित्व का धनी कामिल का मूर्तिकार पिता! यह ऐसा मूर्तिकार है जो अपनी दृष्टि की भास्कर निर्मलता, सोच की उदग्र उदात्तता के लिए, अपनी सौंदर्योन्वेषिनी दृष्टि के लिए, मूर्तिशिल्प हित हेतु किए गए अपने चिंतन के लिए पाठक की संवेदना में गहरे भीतर जा धँसता है।

प्रियंवद की लेखन-यात्रा में ऐसा धर्मस्थल दुबारा शायद ही संभव हो। यह प्रतीकात्मक रूप में और खुले रूप में भी भारतीय न्याय-व्यवस्था के वधस्थल या कत्लगाह होते जाने का मारक और बेधक दस्तावेज है। यह आयातित भारतीय दंड-संहिता, जो साक्ष्यों पर अवलंबित हैं और हमारे न्यायालयों की संविधान सी है, मैं वर्धित और अदालतों में जारी साक्ष्य की पूरी प्रविधि पर प्रश्न खड़ा कर देता है। साक्ष्यों का महत्व वहाँ होता है जहाँ गवाह पढ़े-लिखे और ईमानदार हों। बिकी हुई गवाहियाँ न्याय को हत्यारा बना देती हैं।

इतनी खूबसूरती से इस उपन्यास को रचा गया है कि अचरज होता है कि मूलत: इतिहासवाद माने जान वाले प्रियंवद, मूर्तिशिल्प के कितने गहरे जानकार हैं; सौंदर्यबोध के कितने तल-स्तर पहचानते हैं; कितनी भाषिक साधव वाली दार्शनिक मनोदशा है उनकी।

धर्मस्थल में इतना ही भरा होता तो शायद आज के नजरिए से यह अप्रासंगिक हो जाता लेकिन कचहरी के भीतर होते घात-प्रतिघात, वकील-जज-मुवक्किल की दाँव-पेंच भरी बारीक जानकारियाँ भी प्रियंवद पाठकों को परोसते चलते हैं। पाठक स्तब्ध रह जाता है कि कहीं वकील काले कौव्वे तो नहीं, जज जल्लाद तो नहीं? मुवक्किल, कचहरी के मकड़जाल में फंसा, मरता निरीह कीड़ा तो नहीं?

निश्चय ही यह उपन्यास अपनी अंतर्वस्तु के लिहाज से भी हिंदी की बड़ी मानी जाएगी।

एक

एक खाली, गर्म दोपहरी में बड़े से लोहे के दरवाजे के बाहर खड़ी तोप दिखाते हुए कामिल ने मुझसे कहा था, "यही है धर्मस्थल। गलत मत समझ लेना। यहाँ पूजा पाठ नहीं होता। यहां मनुष्य को न्याय मिलता है। सबसे बड़े धर्म यानी राजधर्म का पालन होता है, इसीलिए हम इसे धर्मस्थल कहते हैं।"

"हम कौन?"

"मैं और मेरे बाबू। चलो तुम्हें तोप की नली पर चढ़ाते हैं। तुम चाहो तो उसके अंदर भी उतर सकते हो। इतनी बड़ी है।"

मेरा हाथ पकड़कर कामिल ने मुझे धूप में जलती चौड़ी सड़क पार करायी थी। मैं देर तक विस्मित और मंत्रमुग्ध सा काली दैत्याकार तोप को देखता रहा था।

"इसके पहिए देखो! पहचानते हो इन्हें?" कामिल ने पूछा।

"नहीं।"

"महाभारत के कैलेण्डर देखना कभी। कृष्ण जो रथ का पहिया उठाए हुए हैं ऐसा ही तो है। बस उसमें तीलियाँ ज्यादा होती हैं।"

तोप को छोड़कर मैं कामिल को देखने लगा था। कैसे जानता है यह इतना सब? यह सन 1968 था।

मेरे पिता शहर में लेबर कमिश्नर के पद पर आए थे। कचहरी से थोड़ी ही दूर पर अंग्रेजों के बने हुए पुराने दो बंगलों में से एक हमें मिला था। शहर के राजकीय विद्यालय के आठवें क्लास में मेरा दाखिला हो गया था। मैंने पहली बार कामिल को उड़ती नजर से क्लास में सबसे पीछे की कुर्सी पर बैठे देखा था।

चारों दिशाओं में पसरी कचहरी की एक दिशा के सामने बहुत बड़ी और ऊँची इमारत थी। उसकी ऊपर की तीन मंजिलों में लोग रहते थे। नीचे दुकानें थीं। मैं घर का छोटा-मोटा सामान लेने वहाँ आता रहता था। वहीं पर अपनी डबल रोटी की तरह फूली, लाल गालों वाली बूढ़ी हमेशा फूलों वाला फ्राक पहनती थी और गोल्डन बेकरी चलाती थी। वहाँ डबल रोटी लेते हुए मैंने पहली बार स्कूल से बाहर कामिल को देखा था। सड़क पर लगे

एक नल के नीचे बाल्टी रखकर पत्थर की लाल बेंच पर बैठा था। डबल रोटी लेकर मैं उसके पास गया। मुझे देखकर वह मुस्कुराया।

"तुम यहाँ रहते हो?" मैंने पूछा।

" हाँ!" कामिल हँसा। उसने अंदर एक ओर इशारा किया, "उधर।"

पुरानी दीवार में बने लोहे के जंगले वाले खुले दरवाजे के बीच एक छोटा सा रास्ता गया था। ऊपर से गिरती हुई शाम की आखिरी धुँधलायी रोशनी में, एक छोटी, चौकोर खुली जगह के बाद ऊपर जाती हुई सीढ़ियाँ दिख रहीं थीं। उस खुली जगह में एक टूटी साइकिल, रस्सी का गोला, दो गमले, झूले की पटरी और कोयले का ढेर पड़ा था। फर्श के एक हिस्से में पानी था। दीवार पर कुछ तारों के सहारे उखड़ा हुआ बिजली का बोर्ड झूल रहा था।

"ऊपर तीसरी मंजिल पर मेरा घर है।"

"यहाँ क्या कर रहे हो?"

"पानी आने का इंतजार कर रहा हूं। हमारे नल की लाइन कहीं टूट गई है। कुछ बाल्टी पानी भरकर ऊपर ले जाऊंगा।" कामिल पत्थर की बेंच से उठ गया।

"तुम कहाँ रहते हो?"

"राशन की दुकान के बाद जो दो बंगले बने हैं...उधर।" नल में पानी आ गया। कामिल नल पर चला गया। झुककर उसने बाल्टी धार के नीचे रख दी।

"तुम्हारे नाम का मतलब क्या है?" मैं पीछे-पीछे आया।

"सम्पूर्ण! ...मेरे जन्म के बाद मेरे पिता ने कहा, मैं तुम्हारे रूप में सम्पूर्ण हो गया हूं। उनके एक मुसलमान दोस्त बैठे थे। उन्होंने बोल दिया, कामिल। वही नाम हो गया। सबको बताना पड़ता है मतलब!" वह हँसा। मैं चला आया।

फिर हम क्लास में एक-दूसरे को पहचान कर हँसने लगे। हमारे घर पास थे इसलिए कई बार हम साथ साथ लौटने भी लगे।

गर्मियों की छुट्टियाँ हो गईं थीं। मैं कामिल से कई बार उसी इमारत के नीचे इधर-उधर मिलता रहा। उस दिन दोपहर को मिल गया था। मैं बर्फ लेने आया था। मुझे देखकर कामिल मुस्कुराया।

"मैं पतंगे लूटने जा रहा हूँ। चलोगे?"

"कहाँ?"

"उधर!" कामिल ने कचहरी की ओर इशारा किया, "वहाँ बहुत पतंगें गिरती हैं। "

"कोई मना करेगा तो?"

" नहीं.... आजकल कचहरी बंद है। गर्मी की छुट्टियाँ हैं। तुमने कभी देखी नहीं?"

"नहीं!" मैंने सर हिलाया।

"मैं तो हमेशा वहीं घूमता हूँ। मेरा दूसरा घर समझ लो। चलो, तुम्हें दिखाता हूँ।

"मैं बर्फ दे आऊँ?"

"ठीक है...मैं यहीं रुकता हूँ।"

बर्फ देकर मैं लौटा तब कामिल ने सड़क के पार पुरानी इमारत दिखाते हुए कहा था, "यही है धर्मस्थल यानी कचहरी।"

तोप को मैंने छुआ। लोहा बहुत गर्म था। मैंने हाथ हटा लिया। "इसीलिये अभी तोप की नली खाली है। बंदर नहीं हैं। जैसे ही शाम होगी वे सब यहाँ कूदने लगते हैं। तब तुम नली में नहीं उतर पाओगे"

"फिर?" मैंने पूछा।

"चलो.... मैं भगा दूँगा उन्हें।" कामिल ने मेरा हाथ पकड़ लिया, "पहले कहाँ देखोगे? अंदर या बाहर बाहर?"

कामिल इस तरह बोल रहा था जैसे कचहरी उसका साम्राज्य हो और कोई अपने साम्राज्य और उस पर अपने प्रभुत्व को दिखाता हो! मेरा असमंजस देखकर कामिल ने खुद ही तय किया, "पहले बाहर से एक चक्कर लगा लेते हैं, फिर अंदर आराम से घूमेंगे। वहाँ जामुन भी तोड़ने पड़ेंगे न?"

कचहरी विशालकाय थी। चारों ओर पुरानी, पीले रंग की छोटी चहारदीवारी से घिरी थी। दीवार पर कोई